Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-209-213

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 209-213
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

उमा शर्मा

शोधार्थी, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

Corresponding Author :

उमा शर्मा

शोधार्थी, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

फणीश्वरनाथ रेणु की कथा-भाषा एवं रचनादृष्टि

शोध सार- फणीश्वरनाथ रेणु प्रेमचंदोत्तर युग के सबसे प्रमुख कथाकार हैं। प्रेमचंदोत्तर युग में जहाँ शैली की नवीनता, विचारधाराओं के प्रति प्रतिबद्धता, कुंठा, मोहभंग और आक्रोश आदि विषय के रूप में थे, उसी युग में रेणु की रचनाओं में ठेठ गँवई गंध का दिग्दर्शन होता है। रेणु किसी भी तरह के शैलीगत बंधन को तोड़कर हमें हमारी अपनी ही दुनिया में अपने जैसे उन तमाम लोगों के बीच ला कर खड़ा करते हैं जिनके बारे में हम महज़ सुनते थे कि वे हैं। उन चरित्रों को अब हम प्रत्यक्ष देख-समझ सकते हैं और यह महसूस कर सकते हैं कि उनके भी भीतर हमारा ही हम साँस लेता है। इन सब में जो सबसे ज़्यादा असरदार है वह है रेणु की रचनादृष्टि, उनके कथा-साहित्य की भाषा, उनकी 'कथा-भाषा'।

बीज शब्द- कथा-भाषा, रचनादृष्टि, आंचलिकता, काव्यात्मक भाषा, जनपदीय चेतना, यथार्थ, श्रवण्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, जीवनधारा, पुनर्पाठ, मूल्यांकन आदि।

मूल आलेख- भाषा शब्द का निर्माण संस्कृत के 'भाष्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है- 'बोलना'। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है जिसकी सहायता से अपने विचारों को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। पारिभाषिक स्तर पर बात करें तो- "भाषा उच्चारण अवयवों द्वारा उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[1] हालाँकि केवल ध्वनि संकेत ही भाषा नहीं है, भाषा होने के लिए संकेतों में भावाभिव्यक्ति की क्षमता का होना आवश्यक है। इसीलिए भाषा कहने से मनुष्य द्वारा प्रयुक्त उच्चरित ध्वनि संकेत को समझा जाता है जिसमें भावों व विचारों का संप्रेषण होता है।

कथा-भाषा का आशय आधुनिक गद्य के कल्पना प्रधान रूपों- उपन्यास एवं कहानी की भाषा से है। भाषा का प्रकार्य एवं गठन दोनों ही विधाओं में लगभग समान है। किन्तु अंतर इस बिंदु पर है कि औपन्यासिक भाषा समूची जीवन दृष्टि विकसित कर सकती है जबकि कहानी की भाषा जीवन के कुछ संगत क्षणों का चुनाव करके उन्हें आलोकित करती है।

इसलिए नहीं कि दोनों के आकार में अंतर है, बल्कि दोनों का विधान अलग है। कहानी सर्जनात्मक गद्य का आद्य रूप और अधिकतर एक कोशकीय विधान है। उपन्यास का चरित्र 'द्वंद्वात्मक' है जहाँ जीवन-दृष्टि के विकास की संभावना अधिक है। कथा, भाषा का ही एक रूप होने के साथ-साथ यथार्थ की रचना और उसकी पहचान का एक विशिष्ट माध्यम है। इस संदर्भ में डेविड लॉज का कथन महत्त्वपूर्ण है कि कथाकार का माध्यम भाषा है। वह जो भी करता है भाषा के माध्यम से ही करता है। इस तरह कह सकते हैं कि कथाकार किसी पूर्व निर्धारित अर्थ को भाषा नहीं देता, बल्कि भाषा के ज़रिए भाषा की अपनी प्रकृति के निर्देशानुसार उसी में 'अर्थ की तलाश' करता है। इसलिए कथा भी यथार्थ तक पहुँचने की एक विशिष्ट प्रणाली है जो अपने तरीके से यथार्थ की अलग रचना करती है। इस विशिष्ट प्रणाली का अनुभव या बोध पाठक तक संप्रेषित करना ही कथाकार का मुख्य उद्देश्य है क्योंकि उसके और पाठक के लिए वह प्रणाली ही अधिक महत्त्वपूर्ण है, वही यथार्थ का स्वरूप निर्धारित करती है।

साहित्यकार अपने विचारों को भाषा के माध्यम से रूपाकार प्रदान करता है। कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने विचारों को पाठकों तक पहुँचाने के लिए भाषा के विविध रूपों का प्रयोग किया है। बोल-चाल की आंचलिक भाषा के साथ-साथ शुद्ध हिंदी, अंग्रेज़ी व बांग्ला के शब्द भी उनकी रचनाओं में प्रचुरता में मिलते हैं। रेणु की प्रसिद्धि का मूल आधार वैसे तो उनकी रचनाओं में आंचलिक तत्त्व की व्याप्ति है, परंतु उनके विविध साहित्य-कोश से गुज़रते हुए हम पाते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में जिसे आंचलिक कहकर अलगाया जाता रहा है, वह वस्तुतः भारत की नब्बे प्रतिशत आबादी का सच है। रचनाकार रेणु की ख्याति पहले-पहल 1954 में प्रकाशित उपन्यास मैला आँचल से प्रकाश में आई, परंतु कहानी के क्षेत्र में रेणु का पदार्पण सन् 1945 में विश्वमित्र पत्रिका में प्रकाशित उनकी कहानी 'बटबाबा' से माना जाता है। यद्यपि इससे पूर्व हिंदी कहानी की ज़मीन प्रेमचंद प्रभृति रचनाकारों द्वारा समृद्ध की जा चुकी थी, फिर भी अपने कथा-साहित्य में जिस प्राण का सिंचन रेणु ने किया वह अभूतपूर्व है। रेणु की रचनाओं में यूँ तो पृष्ठभूमि की एकसारता है, परंतु उस एकसारता में कितना वैविध्य है यह उनकी रचनाओं को टटोल कर ही जान सकते हैं। इनकी रचनाओं में हम जितना पैठते हैं, मालूम होता है कि लोक से, धरती से हमारा जुड़ाव उतना ही बढ़ता जाता है। रेणु की कथाएँ उनके अपने प्रांत बिहार से, अपने लोगों के बीच से निकली हैं। जगज़ाहिर है कि तद्युगीन बिहार में सामान्य वर्ग की स्थिति कैसी थी! इनकी कहानियों के पात्र अशिक्षित हैं, गरीब हैं, तमाम कमज़ोरियों से लैश हैं, परंतु इन तमाम कमज़ोरियों व अभावों के बीच वे आदमी बने रहते हैं, उनमें जीवन बचा रहता है। अकारण नहीं कहा जाता कि रेणु जीवन की कहानियाँ लिखते हैं। चूँकि रेणु की कथा गाँवों से, जनजीवन से जुड़ी है इसलिए- "जनजीवन के यथार्थ और अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए रेणु ने उस यथार्थ और अनुभव-संसार से अभिन्न रूप से जुड़ी भाषा का सहारा लिया है। उन्होंने जनजीवन के यथार्थ और अनुभव को उसी जीवन की भाषा की मदद से नए ढंग से रचा है। रेणु की रचनाशीलता इस बात में है कि उन्होंने यथार्थ और भाषा के आत्मीय संबंध को पहचानते हुए जनजीवन के यथार्थ और अनुभव को अधिक संवेद्य बनाया है और बोलचाल की भाषा को अधिक व्यंजक।"[2] इस तरह रेणु की भाषा हर एक की अपनी कही जाने वाली भाषा है, हर एक को अपनी लगने वाली भाषा है। रेणु की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इन्होंने अपने रचना कर्म के माध्यम से विशिष्ट अंचल के लोगों, वहाँ के समुदायों, उनके जीवन, उनकी आशाओं व आकांक्षाओं को साहित्य की चिंता के रूप में चर्चा के केंद्र में लाने का प्रयास किया। उन्होंने जिस अंचल का निर्माण किया उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप गढ़ी। वहाँ की भौगोलिक स्थिति, नदियाँ, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, लोकगीतों की धुनें- सभी उसी भाषा को बोलते सुनाई पड़ते हैं, उसी अंचल के शब्दों में ख़ुद को अभिव्यक्त करते हैं। भाषा के इसी रूप से रेणु लोक-जीवन का राग-रंग हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

हालाँकि एक नज़र में लग सकता है कि रेणु की रचनाएँ प्रेमचंद की रचनाओं का ही विस्तार हैं, परंतु दोनों के बीच पर्याप्त अंतर बना रहता है। प्रेमचंद ने भी ग्राम्य जीवन को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है और रेणु ने भी। परंतु कथा प्रस्तुत करने की शैली में दोनों साहित्यकारों में भिन्नता है जिसकी वजह से दोनों ही कथाकारों की

उपयोगिता भी अपनी-अपनी जगह पर बनी हुई है। प्रेमचंद के यहाँ भाषा सामान्य खड़ी बोली की है, पर्याप्त खुलापन है, वे किसी एक विषय को पकड़ते हैं और उसे परत-दर-परत खोलते जाते हैं; वहीं रेणु की भाषा में मिट्टी का माटीपन विद्यमान है- पंचलाइट नहीं, 'पंचलैट' कहा जाता है। विषय का खुलापन तो है ही, परंतु कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि रेणु सायास उस विषय को पकड़कर खोल रहे हों। एक हल्का-सा व्यंग्य होता है और सारे पर्दे तार-तार हो जाते हैं। 'एक आदिम रात्रि की महक' में करमा का नाम भर सुनकर ही यह अंदेशा लगा बैठना कि वह संथाल-परगने का है या फिर करमा का यह सोचना कि "हरि को भजे सो हरि के होई! मगर हरि की भी जाति थी"[3] - इतने भर से ही जो ढँका हुआ था, एक पल को नग्न हो उठता है। शमशेर की कविता "बात बोलेगी/ हम नहीं/ भेद खोलेगी/ बात ही"[4] रेणु के यहाँ पूर्णतः चरितार्थ होती जान पड़ती है।

अंचल के संदर्भ में प्रेमचंद से उनकी तुलना रोचक है। वास्तव में दोनों के यथार्थ का फ़र्क केवल आंचलिकता का फ़र्क नहीं है। प्रेमचंद मूलतः वृत्तांत शैली के कथाकार हैं, इसलिए उनकी भाषा में वाक्य संगति अधिक है, रूपकात्मकता कम। जबकि रेणु मूलतः चित्रण शैली का आग्रह रखते हैं, अतः उनके लिए कथा की बजाय पूरे गाँव को, हर ब्यौरे को, एक संश्लिस्ट अनुभव की तरह रचना स्वाभाविक है, जो रूपकात्मक भाषा में ही संभव है। शायद यही कारण है कि प्रेमचंद कुछ ग्रामीण विशेषताओं को कुछ चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं, जबकि रेणु का गाँव स्वयं एक चरित्र है। ये यथार्थ के प्रति दरअसल दो एप्रोच हैं, जो भाषा के जरिये रची जाती है। इस अर्थ में रेणु रवीन्द्रनाथ और शरतचंद्र की परंपरा में ज़्यादा पगे नजर आते हैं बनिस्बत प्रेमचंद की परंपरा के।

कहानियों में रेणु जाति-वर्ण आदि पर सायास विशेष ज़ोर नहीं देते। उनकी रचनाओं में घटनाओं और व्यंग्य-फब्तियों के माध्यम से ही जातीयता का चित्रण हुआ है। कारण कि रेणु की रचना समाज का चित्रण भर करना नहीं चाहती, सोशल ट्रॉन्स्फर्मेशन (social transformation) भी चाहती है। इसलिए जो प्रत्यक्ष है उस पर फब्तियाँ कसी जाती हैं और जहाँ ढकाव-छिपाव की गुंजाइश है उसे सीधे-साफ़ शब्दों में चित्रित करती है इनकी कलम। रेणु के समय में यौनिकता पर बात धीरे-धीरे खुलने लगी थी, परंतु घर-घर के भीतर सदियों से ढँके सच की इतनी यथार्थपरक व्याख्या कि "रामबिलास! बिलसवा साला इतना बड़ा हरामजादा है कि एक दिन विमला को 'मोलेस्ट' कर दिया। विमला रोने लगी तो माँ ने हँसकर कहा, "हँसी- दिल्लगी में भी रोती है?"[5] (प्रजा सत्ता)- यह अन्यत्र दुर्लभ है। रेणु की किसी भी कहानी से गुज़रते हुए हम कहीं भी ठहराव महसूस नहीं करते। उनकी कहानियों में जीवन कहीं भी ठहरा हुआ नहीं है, पर्याप्त गत्यात्मकता बनी हुई है। इनकी कहानियों में चित्रित जीवन को जीने वाला पात्र गिरता है, हारता है, उदास होता है, पर रुकता नहीं है। "जीवन की एक उद्दाम भावना उनकी कहानियों में सर्वत्र दिख पड़ेगी। उदासी के भीतर निरंतर वर्तमान प्राण-शक्ति। यह प्राण-शक्ति ही उदासी को सह्य बना देती है।"[6] रेणु-रचनावनी में व्यक्त लोक में एक अदम्य प्राण प्रवहमान है। तमाम ऊहा-पोह, परेशानियों के बीच पंचलैट का जलना महज़ एक पेट्रोमैक्स का जलना भर नहीं है; यह प्रतीक है प्रकाश का, उस प्रकाश में गोधन के प्रति गाँव में व्याप्त तमाम मैलों के धुल जाने का, एक-दूसरे से तमाम तरह के ईर्ष्या-द्वेष, मतभेदों को भुला कर एक ही रौशनी के तले साथ होने का। दिन भर के गुस्से और निराशे से उद्वेलित बिरजू की माँ का पंचसीस देखकर सारा गुस्सा पी जाना, गाड़ी पर बैठते ही नींद लगना जैसे उसके जीवन की साध पूरी हो गई हो, वह सचमुच ही लाल पान की बेगम हो गई हो (लाल पान की बेगम)। करमा का मगहिया डोम के तंबू में उठती उमेरवाली छौड़ी को अपने हाथ की हलवा पुरी न खिला पाने पर अफसोस करना और आख़िरकार बाबू के साथ स्टेशन छोड़कर नहीं जाना, जैसे सरस्वती और उसके परिवार के लोगों के बीच उसने जीवन की वो महक पा ली है जिसे वह तलाशते रहा था लगातार यहाँ से वहाँ (आदिम रात्रि की महक)। ये छोटी-छोटी घटनाएँ- जिनमें पैठा जीवन पाठक के चित्त को आनंदविभोर कर देता है, उसके अपने जीवन में व्याप्त अंधेरे को, निराशा को पल भर के लिए शमित कर देता है। जीवन कैसे पल-दर-पल अपनी गति से बढ़ते जाता है- इसके पर्याप्त उदाहरण रेणु अपनी हर रचना में देते चलते हैं।

कहानीकार रेणु की रचनादृष्टि प्रमुखतः ग्रामीण जीवन की कहानियों में दिखाई पड़ती है। इन्हीं ग्रामीण परिवेश की कहानियों में उनकी संवेदना पूर्णतः अभिव्यक्ति पाती है। विषम, दम-घोंटू, अमानवीय परिस्थितियों के बीच मानवीयता को तलाश कर अमानवीयता के सामने खड़ा कर देना रेणु की विशेषता है। बिरजू की माँ को ही ले लीजिए। तमाम तरह के ईर्ष्या-द्वेष को भुला कर अंततः सबको बैलगाड़ी पर साथ बिठा कर नाच दिखाने ले जाती है (लाल पान की बेगम)। सिरचन बिना कुछ विशेष लिए बस एक समय खा कर काम करता है गाँव भर का। स्वाभिमानी है, इसलिए किसी की बात नहीं सह सकता, सहना भी नहीं चाहिए। मंझली भाभी की तीखी बातों से रुष्ट हो कथावाचक के घर से काम अधूरा छोड़ चला जाता है पर स्टेशन पर रोती हुई मौना के लिए बेहतरीन कारीगरी से बनी चिक और शीतलपाटी लेकर पहुँच जाता है और बदले में कुछ भी नहीं लेता (ठेस)। ऐसी अदम्य मानवीयता रेणु की लगभग हर एक कहानी में झाँक रही है, भले ही उसके रूप अलग-अलग हों। जैसे हीरामन और हीराबाई के बीच का अनकहा कुछ (तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुलफाम) या संवदिया हरगोविंद का बड़ी बहुरिया के मैके जाकर भी कुछ न कह पाना (संवदिया)। यथार्थ कहा गया है कि "रेणु की कहानियों में जीवन की धड़कन है, भले ही परिस्थितियाँ दम घोंटती है।"[7] उनकी कहानियों में चित्रित आदमियों से ज़्यादा उनकी आदमियत लुभा जाती है।

भाषा रेणु की रचनाओं को आंचलिकता का तत्त्व प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई है। लेकिन यह आंचलिकता कहीं भी रचनाओं के प्रवाह में दुरुहता नहीं पैदा करती। यह कथाकार का अपना वैशिष्ट्य है। रेणु ने अपने साहित्य में कथा, पात्र, परिवेश एवं अंचल के अनुसार भाषा का चयन किया है। ग्रामीण परिवेश में बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है तो शहरी परिवेश में शहर की भाषा- 'कचहरी भाषा' का भी प्रयोग है। भाषायी स्तर पर ग्रामीणता व शहरीपन का यह समन्वय कथाकार की अन्यतम विशेषता है। बहुत ही कम रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रामीण तथा शहरी भाषा का ऐसा अनूठा समन्वय किया हो।

रेणु की कहानियों में गाँव अपनी प्रकृति के साथ रागात्मक तादात्म्य में है। मैनेजर पांडेय के शब्दों में, "ग्रामांचल की प्रकृति, जनजीवन और लोकसंस्कृति से उनका लगाव सहज और स्वाभाविक है, किसी सिद्धांत के आग्रह से उपजी बौद्धिक सहानुभूति के कारण नहीं, इसलिए इस लगाव में एक ऐसी दृढ़ता है जो कोरी बौद्धिक सहानुभूति में नहीं होती।"[8] उनकी कहानियों में गाँवों की सांस्कृतिक छवि सबसे अधिक मुखर है। हर कहानी में एक प्रकार का लिरिक है, जिसमें दर्द और बेचैनी है, जीवन को सहेजने की छटपटाहट है। बावजूद इसके, इनकी कहानियों में कहीं सांस्कृतिक पकड़ ढीली नहीं होती। बाजे रे मुरलिया, बैस्कोप, महुआ घटवारिन के गीत, सिलेमा के गानों तक का उद्धरण प्रसंगवश उनकी कहानियों के परिवेश में मिलता है।

फणीश्वरनाथ रेणु के विपुल कथा-साहित्य के विश्लेषण के उपरांत यह पाया गया कि रेणु की रचनाओं को आंचलिक कहकर साहित्य की मुख्य धारा से अलग खड़ा कर दिया जाता है। लेकिन- "रेणु का स्थान यदि अपने पूर्ववर्ती और सामाजिक आंचलिक कथाकारों से अलग और विशिष्ट है तो वह इसमें है कि आंचलिक उनका सिर्फ़ परिवेश था, उसके भीतर बहती जीवनधारा स्वयं अपने अंचल की सीमाओं का उल्लंघन करती थी। रेणु का महत्त्व उनकी आंचलिकता में नहीं, आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है।"[9] स्वयं रेणु भी 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में कहते हैं- "साहित्य के राजदार पंडित कथाकार आलोचकों ने हमेशा नाराज़ होकर मुझे एक जीवन दर्शनहीन-अपदार्थ-अप्रतिबद्ध व्यर्थ प्राणी प्रमाणित किया है- सारे तालाब को गंदा करने वाला जीव। इसके बावजूद मुझसे कभी इससे ज़्यादा नहीं बोला गया कि अपनी कहानियों में मैं अपने को ढूंढ़ता फिरता हूँ: अपने को अर्थात् आदमी को।"[10] असल में रेणु चली आ रही घिसी-पिटी परंपरागत साहित्यिक मूल्यों से लोहा लेने वाले कथाकार हैं। भाषा के अभिजात्य स्वरूप से विद्रोह, एक लोकधर्मी निजी भाषा का निर्माण और उसमें श्रवण्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, जीवन संदर्भों के प्रति नवीन दृष्टि व चेतना लाने का उल्लेखनीय कार्य रेणु ने किया है। रेणु ने भाषा के उस असीम भंडार को खोजा जिसमें लोकगीत, लोक ध्वनियाँ, लोकोक्तियाँ, जनपदीय चेतना अपनी आभा बिखेरते हैं। उनकी भाषा में

'चित्रात्मकता' के गुण विद्यमान हैं जिस कारण से उनकी रचनाओं को पढ़ते समय पाठकों को महसूस होता है कि मानो घटनाएँ उनकी आँखों के समक्ष ही घट रही हों। रेणु ने अपनी रचनाओं में काव्यात्मक भाषा, लाक्षणिक भाषा, आलंकारिक भाषा, प्रतीकात्मक भाषा आदि का प्रयोग किया है। उनके विविध कथा-कर्म में उनकी भाषागत विविधता भी द्रष्टव्य है। जैसा कि वे स्वयं कहते हैं- "गाँव से कुछ न कुछ नया लेकर आता हूँ- हर बार : कभी नया चूड़ा, नया चावल, नया गुड़। कभी-कभी नया शब्द।"[11] यह हर बार का नयापन ही उनकी विशिष्टता है।

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-कर्म को ध्यान में रखते हुए सारांशतः कहा जा सकता है कि रेणु की सबसे बड़ी खासियत है- 'शिल्प की शिल्पहीनता'। चूँकि इनके यहाँ कथानक में इतना बिखराव है, जीवन इस कदर बिखरा हुआ है कि परंपराप्रसूत शिल्पगत पैमाने पर उसका चित्रण संभव ही नहीं। जीवन के बिखराव को समेटने के लिए, समाज के बिखराव को दिखाने के लिए रेणु सायास शिल्प और भाषा को बिखेरते हैं। साहित्यिक दुनिया में इस शिल्पहीन शिल्प की आलोचनाएँ बहुत हुईं। कुछ ने इस बिखराव के सौंदर्य की तारीफ़ की तो कुछ ने आंचलिक कह कर एक तरफ़ कर दिया। परंतु जिस दौर में रेणु लिख रहे थे क्या अभिजात्य भाषा शैली या किसी अन्य शिल्प-विधान के अंतर्गत उसे उकेरना यथार्थपरक होने के साथ-साथ के साथ समष्टि में भी ग्राह्य हो पाता- 'नहीं'। भले ही आलोचक अपने बने-बनाए पैमाने लेकर खड़े रहें पर किसी रचना की सच्चे अर्थों में आलोचना करने के लिए उसके देशकाल में जाना अनिवार्य हो जाता है। भाषा के स्तर पर जिन रचनाओं को बार-बार आंचलिक कहकर अलगाया जाता है, तो इस बात पर ध्यान जाना सहज ही है कि क्या कारण है कि कथाकारों ने अपने कथा-साहित्य में आंचलिक मानी जाने वाली भाषा का प्रयोग किया रेणु की कथा-भाषा, भाषिक चिंतन परंपरा में उनका योग, उनके अभिनव भाषिक प्रयोग आदि अनेक सवाल हैं जिनके उत्तर तलाशने की वर्तमान समय में आवश्यकता है। रेणु की रचनादृष्टि और उनकी रचनाओं में दृश्यमान लोक की पृष्ठभूमि तो एक है परंतु उसका फ़लक-विस्तार इतना व्यापक है कि उसे बने-बनाये मूल्यांकन के दायरों में समेट पाना न संभव है, न जायज़ है, और न ज़रूरी ही। एक पूरी की पूरी दुनिया, समूचा जीवन इनकी रचनाओं में जीता है, जिसके मूल्यांकन के साथ ही पुनर्पाठ की आवश्यकता समय-दर-समय बढ़ती जाएगी। अनिश्चित भविष्य तक रेणु जैसे कथाकार की, उनकी रचनादृष्टि की ज़रूरत बनी रहेगी।

संदर्भ सूची :

1. पाठक, दानबहादुर एवं भार्गव, मनहरगोपाल, भाषा विज्ञान, पृ. 59.
2. यायावर, भारत (संपा.), फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, पृ. 151.
3. यायावर, भारत (संपा.), रेणु रचनावली-1, 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 374.
4. सिंह, नामवर (संपा.), प्रतिनिधि कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, 11वाँ संस्करण, 2022, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 43.
5. यायावर, भारत (संपा.), रेणु रचनावली-1, 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 484.
6. चौधरी, सुरेंद्र (संपा.), हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति, 2001, अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, पृ. 194.
7. चौधरी, सुरेंद्र (संपा.), हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति, 2001, अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, पृ. 194-195.
8. यायावर, भारत, फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-14.
9. वर्मा, निर्मल, कला का जोखिम, 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 63.
10. रेणु, फणीश्वरनाथ, मेरी प्रिय कहानियाँ, 1982, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका
11. यायावर, भारत, फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-136.

•